

भगवान् कृष्ण की भक्ति वत्सलता



सुनील कुमार सिंह
शोधार्थी, संस्कृत विभाग,
मगध विश्वविद्यालय,
बोधगया, बिहार, भारत।

परमात्मा ही प्राणियों की सृष्टि करता है और वही पालन भी करता है। इतना ही नहीं मानव या प्राणी के द्वारा कुछ प्रमाद या दोष करने पर वह दण्डित भी करता है। किन्तु वह दण्ड प्राणी को भयाक्रान्ति करने के लिए नहीं देता, अपितु उसे कर्म का स्मरण, कराने एवं कुमार्ग से हटाकर सत्पथ पर आने के लिए देता है। श्रीकृष्ण ने कंस, शिशुपाल, शाल्व आदि को मारा इसका अभिप्राय यह नहीं समझना चाहिए कि 'प्राण ले लेना' यह कौन सी चेतावनी है ? इस जिज्ञासा का समाधान यह है कि श्रीकृष्ण ने जिनका वध किया, वह उनके उद्धर के लिए किया। 'शत्रुता' भी भक्ति का ही एक अंग है। भक्ति तथा अन्तःकरण की एकरूपता प्रीति है— "सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा"¹ आसवित्त प्रीति का गहनतम एवं व्यापक रूप है। यही परम प्रीति— जब परमात्मा से हो जाता है तो भगवान् में वात्सल्य भाव उमड़ पड़ता है। वे भक्त के उद्धार के लिए स्वयं तत्पर हो जाते हैं। चाहे भक्त की आकांक्षा जैसी भी हो प्रभु पूरा करते हैं।

भक्त का भगवान् के प्रति यह अनुराग अनेक रूपों में होता है— अर्जुन का कृष्ण में सखाभाव है, गोपियों का कृष्ण में प्रेमी—प्रेमिका भाव है, कंस का कृष्ण में शत्रु भाव है, देवकी—वसुदेव एवं यशोदा का पुत्रभाव है इत्यादि। भगवान् के प्रति अनेक रूपों में इस प्रेमभाव या आसवित्त को देखकर कई भक्त विद्वानों ने भक्ति के स्वरूप को कई रूपों में विभक्त किया है। भागवत में भी अनेक भेदोपभेद द्वारा भक्तित्व का सर्वांगीण निरूपण हुआ है। भक्ति के मुख्य भेदों का निर्देश मात्र—

निर्गुणभक्ति — अविच्छिन्न रूप से निष्काम और अनम्य प्रेम होना ही निर्गुण भक्ति है—

मदगुण श्रृतिमात्रेण मयि सर्वगुहाशये ।
मनोगतिरविच्छिना यथा गंगाम्यसोऽम्बुधौ ॥
लक्षणं भक्तियोगस्य निर्गुस्य युदाहृतम् ।
अहैक्यवहिता या भक्तिः पुरुषोत्तमे ॥²

गजेन्द्र, शौनक, ध्रुव और सनकादि अपने—अपने भावों को छोड़कर निर्गुण हो गये थे।

त्रिविद्या संगुण भक्ति :— साधकों के भाव के अनुसार संगुण भक्ति का अनेक प्रकार से प्रकाशित होती है, क्योंकि स्वभाव एवं गुणों के भेद से मनुष्यों को भाव में भी विभिन्नता आ जाती है।³

सात्त्विक – जो व्यक्ति पापों का क्षय करने के लिए, परमात्मा को अर्पण करने के लिए और पूजन करना अपना कर्तव्य मानकर पूजन-अर्चन करता है, वह सात्त्विक भक्ति है।⁴

राजस – जो पुरुष विषय, यश और ऐश्वर्य की कामना से प्रतिमादि में भाव पूजन करता है, उसे राजसी भक्ति कहते हैं।⁵

तामस – जो भेददर्शी क्रोधी पुरुष हृदय में हिंसा, दम्भ अथवा मात्सर्य का भाव पूजन करता है, वह तामस भक्ति है।⁶

पंचविद्याभक्ति – इसके अनुसार भगवान् में किसी प्रकार भी मन लगना चाहिए। तत्सम्बन्धी पाँच भाव हैं— सृदृढ़ वैर, बैरहीन अविभाव, भय, स्नेह और काम।⁷ शिशुपाल आदि राजाओं ने सृदृढ़ वैर से नारद ने भक्तिभाव से कंसने भय से, युधिष्ठिर एवं यदुवंशियों ने स्नेह से और भय से, युधिष्ठिर एवं यदुवंशियों ने स्नेह से और गोपियों ने काम भाव से भगवान् में मन लगाया।

नवधाभक्ति – भक्ति के नौ भेदों का भी उल्लेख श्रीमद्भागवत में मिलता है। ये भेद हैं— भगवान् के गुण—लीला नाम आदि का श्रवण, उर्हीं का कीर्तण, उनके रूप नाम आदि का स्मरण, उनके चरणों की सेवा, अर्चना, वन्दना करना, दास्य सख्य और आत्मनिवेदन।

इन विविध रूपों में भक्त भगवान् की सेवा अराधना करता है। जब भक्त का प्रेम पराकर्षा पर पहुँच जाता है तो प्रभु द्रवित होते हैं और भक्त पर कृपा करते हैं। संकट में पड़ा हुआ भक्त आर्तनाद करता है, प्रभु को अत्यन्त दीनभाव से पुकारता है। कभी—कभी यह भी देखा जाता है कि पूर्वकृत भक्ति या तपस्या का फल अपर जन्म में मिलता है। पूर्व संस्कारों के स्मरण नहीं होने परभक्त समझ नहीं पाता कि यह कैसा चमत्कार है। वास्तव में प्रभु की यही कृपा है, यह उसकी वत्सलता है।

भगवान् भक्तवत्सल है। ये प्राणियों पर अहैतुकी कृपा भी करते हैं। सज्जनों के सम्मान की रक्षा, दीन—दुःखियों की कष्टनिवृत्ति, दलितों का उद्धार इत्यादि लोकहितकारी कर्मों में श्रीकृष्ण हमेशा तत्पर रहते हैं। यह वात्सल्य भाव उनके चरित्र की महान् वैशिष्ट्य है। सम्प्रति श्रीकृष्ण की वत्सलता ही वर्णनीय है।

यमलार्जुन का उद्धार – भगवान् के प्रति जिनके हृदय में असीम प्रेम होता है, प्रभु अवश्य ही उस पर कृपा करते हैं, चाहे वह वाचिक रूप में कहे या न कहे। देवर्षि नारद के शाप से नलकूबर और मणिग्रीव जड़ (अर्जुन वृक्ष) बन गये थे। भगवान् जान रहे थे कि ये मेरे प्रेमी हैं, भक्त हैं, इनके हृदय में मेरे प्रति अनुराग है। इसलिए स्वयं उलूखल में बंधे हुए बालश्रीकृष्ण दोनों अर्जुन वृक्षों के बीच समा गये और जोरों से उलूखल को खींच दिया। दोनों वृक्ष धराशयी हो गये। इनमें से दो दिव्य पुरुष (नलकूबर और मणिग्रीव) निकले। श्रीकृष्ण के द्वारा अपकृत या मुक्त किये गये दोनों यक्ष उनकी स्तुति करने लगे। प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने कहा —

साधूनां समचित्तानां सुतरां मत्कृतात्मनाम्।

दर्शनान्नो भवेद् बन्धः पुंसोऽश्वोः सवितुर्यथा ॥⁸

अर्थात् जिनकी बुद्ध समदर्शिनी है और हृदय पूर्ण रूप से मेरे प्रति समर्पित है, उन साधु पुरुषों के दर्शन से बन्धन होना ठीक वैसे ही सम्भव नहीं है, जैसे सूर्योदय होने पर मनुष्य के सामने अस्थकार का होना। ऐसा कहकर भगवान् ने दोनों यक्षों का उस जड़ योनि से उद्धार कर दिया और अपनी भक्ति देकर उन्हें विदा कर दिया।

भगवान् कृष्ण स्वयं ही यमलार्जुन के उद्धार के लिए पहुँच गये। वृक्षों के पास वाणी नहीं थी। वे बोल नहीं सकते थे, अपनी व्यथा सुना नहीं सकते थे, भगवान् को पुकार नहीं सकते थे। ऐसी विवशता देख प्रशु स्वयं ही वहाँ चले गये, उनकी जड़ता रूपी कलेवर वृक्ष को गिरा दिया, शुद्ध चैतन्य स्वरूप की प्राप्ति हुई। धन्य है प्रभु जो अन्तर्वेदना को जानकर स्वयं कृपा करते हैं।

फलविक्रयिणी पर कृपा – श्रीकृष्ण छोटे हैं। वे अब आंगन में गलियों में घूमते फिर रहे हैं। गली में फल बेचनेवाली ने आवाज दी फल! आवाज सुनते ही कृष्ण फल खरीदने के लिए चंचल हो उठे। अपनी अंजलि में अनाज उठाया और चल पड़े। अनाज तो झार-झार कर रास्ते में ही गिर पड़ा, किन्तु फल बेचनेवाली ने इनकी अंजलि फल से भर दी।

जो सबको फल (कर्मफल) दिया करते हैं, आज एक सामान्य स्त्री उन्हें ही फल दे रही है। उसने वात्सल्य प्रेम के कारण श्रीकृष्ण को फल दे दिया। फिर भगवान् भी कब चूकनेवाले थे, उन्होंने रत्नों से उसकी टोकरी भरी थी। अब उसे स्वल्प धन के लिए गली गली घूमने की आवश्यकता न रही। कैसी अहैतुकी कृपा है प्रभु की। जिसने इनके प्रति थोड़ा भी शुद्धभाव से प्रेम रखा, इन्होंने अवश्य ही उसपर कृपा की, उसका उद्धार कर दिया। ऐसे भक्तवत्सल है हमारे भगवान् श्रीकृष्ण।

क्रीणिहि भोऽफलानीति श्रुत्वा सत्वरमच्युतः।

फलार्थी धान्यमादाय ययौ सर्वफलप्रदः।

फलविक्रयिणी तस्य च्युतधान्यं करद्वयम्।

फलैरपूर यद् रत्नै फलभाण्डमपूरि च ॥⁹

दाधाग्नि से परिवृत्त गोपों पर कृपा – वन में घूमते-घूमते एक दिन ब्रजवासी और गौएँ सब बहुत थक गये थे। वे भूख-प्यास से भी व्याकुल थे। वे उस रात ब्रज नहीं लौटे। वहीं यमुना तट पर सो गये। प्रायः आधी रात के समय वन में आग लग गयी। सभी गोप एवं गायें दावग्नि से धिर गये। आग से बचने का कोई उपाय नहीं रहा तब वे व्याकुल हो गये और श्रीकृष्ण की शरण में आये।

सुदुस्तरान्नःस्वान् पाहिकालाग्ने: सृदृढः प्रभो।

न शक्नुमस्तवच्चरणं संत्यक्तुमकुतोभयम् ॥

इत्थं स्वजनवैकलव्यं निरीक्ष्य जगदीश्वरः।

तमग्निमपिबत्तीत्रमनन्तोऽनन्तशक्तिधृक् ॥¹⁰

गोपों का दीनवचन सुनकर भगवान् के हृदय में करुणा का भाव उमड़ आया। सर्व पाप-तापहारी भगवान् श्रीकृष्ण अपने तेज बल से दावग्नि को पी गये अर्थात् अपने तेजोमय स्वरूप में दावग्नि के तेज को विलीन

कर लिया और व्रजवासियों पर कृपा की। करुणा, वरुणा प्रभु कब अपने आश्रितों की नहीं सुनते? स्वजनों के संकट में देख वे स्वयं ही उन्हें उबार देते हैं।

दर्जी पर कृपा – कंस का आमंत्रण पर कृष्ण मथुरा पहुँचे। नगर में पहुँचने पर सबसे पहले उन्होंने दुर्मुख, अशिष्ट एवं अहंकारी धोषी को दण्डित किया। फिर आगे बढ़े तो एक दर्जी मिला। दोनों भाइयों के श्याम सलोने मुखमण्डल को देखकर उसका मन मोहित हो गया। उसने प्रसन्न होकर सुन्दर-सुन्दर परिधानों से उन दोनों को अलंकृत कर दिया। वस्त्रों से विभूषित दोनों भाई अत्यन्त शोभायमान हुए। दोनों भाई दर्जी की उदारता, सदाशयता एवं भक्ति से बहुत प्रसन्न हुए। जब प्रभु प्रसन्न हो गये तो किस बात की कमी रह गयी। उन्होंने दर्जी को समस्त लौकिक ऐश्वर्यों से भर दिया तथा दूर-दूर तक देखने और सुनने की अपूर्व इन्द्रिय शक्ति दे दी। प्रभु इतने से संतुष्ट न हो सके। उनके तो वत्सलता का सागर सा उमड़ रहा था। इन्होंने दर्जी को मृत्यु के बाद अपना सारूप्य मोझ भी प्रदान किया।

नानालक्षणवेषाभ्यां कृष्णरामौ विरेजतुः।

स्वलंकृतौ बालगजौ पर्वणीव सितेतरौ।

तस्य प्रसन्नो भगवान् प्रादात् सारूप्यात्मनः।

श्रियंच परमां लोके बलैश्वर्यस्मृतीन्द्रियम् ॥¹¹

सुदामा माली पर कृपा – दर्जी का आतिथ्य ग्रहण कर भगवान् अग्रज के साथ आगे बढ़े तो सुदामा नामक माली का घर मिला। प्रभु का आगमन सुनकर वह व्यग्र होकर प्रतीक्षा कर रहा था। भगवान् जैसे ही उसके घर के पास पहुँचे वह उठकर खड़ा हो गया, धरती पर माथाटेक कर प्रणाम किया और घर के भीतर ले गया। माली भक्तिभाव में सराबोर था। उसने दोनों भाइयों के पाँव पखारे, हाथ धुलाये अर्थात् उन्हें पाद्य, अर्ध्यादि देकर पूजन किया। फिर स्तुति करके पूछने लगा— प्रभों मैं कैसे आपका स्वागत करूँ? मैं आपका दास हूँ। मैं आपकी सेवा करना चाहता हूँ। भगवान् उसकी भक्ति से प्रसन्न हो रहे थे। उनका हृदय उसकी, श्रद्धा, सेवा त्यागभाव, दास्य देखकर द्रवित हो गया। उन्होंने मौन भाव से संकेत दिये। माली ने सुगंधित फूलों की माला बनाकर पहना दी, दोनों भाईयों को अलंकृत किया।

इत्यभिप्रेत्य राजेन्द्र सुदामा प्रीतमानसः।

शस्तैः सुगन्धैः कुसुर्मर्माला विरचिता ददौ ॥¹²

उसकी सेवा एवं समर्पण से भगवान् प्रसन्न हो गये भगवान् ने उससे वर मांगने को कहा। भौतिक सुखों के प्रति निःस्पृह एक मात्र प्रभुसेवा को ही सर्वोत्तम धन मानते हुए माली ने तदनुरूप ही वर मांगा—

सोऽपि वव्रेऽचलां भक्तिं तस्मिन्नेवाखिलात्यमनि।

तदभक्तेषु च सौहार्द भूतेषु च दयां पराम् ॥¹³

अर्थात् प्रभो! आप ही समस्त प्राणियों के आत्मा हैं। सर्वस्वरूप आपके चरणों में मेरी अविचल भक्ति है।

श्रीकृष्ण ने सुदामा को उसके मांगे हुए वरदान तो दिये ही— वंशक्रम से बढ़नेवाली लक्ष्मी (धनदौलत)

भी दी। साथ ही बल, आयु, कीर्ति और कान्ति का भी वरदान दिया।¹⁴

भगवान् की दृष्टि में सारे भक्त समान हैं चाहे वह लौकिक दृष्टि से धनी हो या गरीब, ऊँच हो या नीच। एक सामान्य माली जिससे भगवान् के लिए फुल-पत्तियों की एक माला दी। महत्व माला का नहीं, महत्व है सुदामा के सेवाभाव, समर्पण एवं प्रभु के प्रति श्रद्धा का। उसने प्रभु को पहचाना, उनका समुचित आतिथ्य किया, स्तुति की, फिर अपने पास जो कुछ है उसे प्रभु की इच्छानुसार अत्यन्त प्रेमपुर्वक दिया। उन फूलों की माला से ही प्रभु प्रसन्न हो गये। अभिप्राय यह है कि प्रभु के प्रति भक्ति भाव हो, प्रधानता उसी की है। पूर्णसमर्पण से ही प्रभु प्रसन्न होते होते हैं और उनकी कृपा प्राप्त होती है।

सैरन्ध्री कुञ्जा पर कृपा – सुदामा माली से सत्कृत होकर श्रीकृष्ण अपनी मण्डली के साथ राजमार्ग पर आगे चले, तब उन्होंने एक युवती को देखा। उसका मुखमण्डल तो बहुत सुन्दर था किन्तु वह पीठ से कुबड़ थी। वह अपने हाथ में चन्दन का पात्र लिये जा रही थी। कृपालु कृष्ण के हृदय में उसके प्रति दया आ गयी— इतना सुन्दर रूप और शरीर टेढ़ा विकृत। श्रीकृष्ण ने पूछा— सुन्दरी! तुम कौन हो ? यह चन्दन किसके लिए ले जा रही हो ? यह अंगराग मुझे दे दो, इससे तुम्हारा परम कल्याण होगा।

का त्वं वरोर्वेतदु हानुपलेपनं
कस्याङ्गने वा कथय स्व साधु नः
देह्यावयोरङ्ग विलेपमुत्तमं
श्रेयस्ततस्ते न चिराद् भविष्यति ॥ 15 ॥

इस श्लोक के चतुर्थ पाद से स्पष्ट पता चलता है कि कुञ्जा के उद्घार के लिए ही भगवान् ने उससे चन्दन मांगा, अपना शृंगार उन्हें अभिप्रेत नहीं है।

कुञ्जा ने कहा—प्रभों! मैं कंस की सैरन्ध्री हूँ। मेरा चन्दन और अंगराज राजा को बहुत पसन्द है। मैं उनके लिए यह चन्दन ले जा रही हूँ। लेकिन अभी आप दोनों (बलराम, श्रीकृष्ण) से बढ़कर इसके लिए दूसरा योग्यपात्र नहीं है।

कुञ्जा ने अपना सुगन्धित अंगराग भगवान् कृष्ण को दे दिया। उन्होंने अपने साँवले शरीर पर पीले और बलराम ने गोरे शरीर पर लाल अंगराज लगाया। वे दोनों नाभिपर्यन्त अंगराज लगाकर अत्यन्त सुशोभित हुए। श्रीकृष्ण कुञ्जा पर बहुत प्रसन्न हुए और उसके शरीर को सीधा करने का निश्चय किया। भगवान् ने अपने चरणों से कुञ्जा के दोनों पंजे दबा लिये और हाथ ऊँचा करके दो अंगुलियाँ उसकी ठोड़ी में लगायी तथा शरीर को तनिक उचका दिया। उचकाते ही उसके सारे अंग सीधे और समान हो गये।

प्रसन्नो भगवान् कुञ्जां त्रिवक्रां रूचिराननाम् ।
ऋज्वी कर्तु मनश्चक्रे दर्शयन् दर्शने फलम् ॥
पदभ्यामाक्रम्य प्रयदे द्वयङ्गल्युत्तानपाणिना ।
प्रगृह्य चुबुकेऽध्यात्ममुदनीनमदच्युतः ॥
सा तदर्जसमानाङ्गी बृहच्छ्योणियोधरा ।

मुकुन्दस्पर्शनात् सद्यो बभूव प्रमदोत्मा ॥ १६

कुब्जा ने भगवान का शृंगार किया शोभन बनाया तो भगवान् ने भी उसे सौन्दर्य प्रदान किया, उसकी आंगिक विकृति दूर कर दी। भक्तवत्सल प्रभु भक्त की कुण्ठा कैसे सह सकते थे। जैस ही प्रभु के श्रीचरणों में अनुरक्त भक्त सामने आया उनकी करुणा की धारा प्रवाहित होने लगी। फिर तो भक्त स्वयं उस प्रवाह में सिक्त हो जाता है। उसी सारी व्यथा-कथा समाप्त हो जाती है, सौभाग्य फलित हो जाता है, फिर उसके जैसा पुण्यभागी कोई नहीं होता धन्य है ऐसे भक्तवत्सल भगवान् श्रीकृष्ण जिनकी अहैतुकी कृपा भक्तों को प्राप्त होती रहती है।

कुब्जा अपने घर में भगवान् का स्वागत करना चाहती थी, उनके साथ क्रीड़ा करना चाहती थी। भगवान् ने कंसवध के बाद उसकी अभिलाषा पूरी की—

आहूय कान्तां नव सङ्गमहिया
विशङ्कितां कंकणभूषिते करे ।
प्रगृहय शश्यामधिवेश्य रामया
रेनेऽनुलेपार्णपुण्यलेशया ॥ १७

अक्रूरजी पर कृपा — कंसवध के बाद बलराम सहित भगवान् अक्रूर जी के पास आये। अपने घर आये हुए श्री कृष्ण को देखकर अक्रूर जी बहुत प्रसन्न हुए। वे आसन छोड़कर कृष्ण की सेवा के लिए दौड़ गये। आसन पर बैठाकर अक्रूर ने उनके चरण पखारे, पूजन-सामग्रियों से उनका पूजन किया। स्वयं को सौभाग्यशाली मानते हुए अक्रूर ने श्रीकृष्ण की स्तुति की अक्रूर कृष्ण के आगमन को उनकी महती कृपा मान रहे हैं कि स्वयं भगवान् मेरे घर पधारे हैं, हमें इनके साक्षात् दर्शन हो रहा है। अक्रूर ने भगवान् से निवेदन किया कि स्त्री, पुत्र, धन, स्वजन, ग्रह और देह आदि के मोह रूपी रस्सी से बंधे हुए हैं। आप इस बन्धन का काटकर हम मुक्त कर दें। आपही जन्म-मृत्यु के बन्धन से छुड़ानेवाले हैं।

दिष्ट्या जनार्दन भवनिह नः प्रतीतो
योगेश्वरैरपि दुरापगतिः सुरेशैः ।
छिन्ध्याशु नः सुतकलत्रधनाप्रगेह गेह —
देहादिमोहरशनां भवदीयमायाम् ॥ १८

भगवान् ने अत्यन्त विनम्र शब्दों में कहा है कि आप महान् संत है। संत तो देवताओं से भी बढ़कर होते हैं। देवताओं में तो स्वार्थ होता है किन्तु संतों में स्वार्थ नहीं होता आपका कल्याण होगा।

इस प्रकार अक्रूर का आग्रह स्वीकार कर भगवान् ने उनपर कृपा दिखलायी।

कुन्ती की भक्तिभावना का समादर — ज्ञात है कि कुन्ती श्रीकृष्ण की बुआ है। कुन्ती को कृष्ण के प्रति एक बच्चे के समान स्नेह करना चाहिए था, किन्तु वह श्रीकृष्ण की महिमा से अवगत थी, वह जानती थी कि परमब्रह्म ही देवकी के गर्भ से अवतरित हुआ है। उसके साथ लौकिक सम्बन्ध का पालन तो मूर्खता है। इसलिए कुन्ती एक आर्त भक्त

के रूप में उनके साथ व्यवहार करती है। अक्रूर जी के समक्ष श्रीकृष्ण के प्रति अपना भाव व्यक्त करती हुई वह कहती है—

कृष्ण कृष्ण महायोगिन् विश्वात्मन् विश्वभावन ।
प्रपन्नां पाहि गोबिन्द शिशुभिश्चावसीदतीम् ॥
नान्यत्वं पदाभ्योजात् पश्यामि शरणं नृणाम् ।
बिभ्यतां मृत्युसंसारादीश्वरस्यापवर्गिकात् ॥
नमः कृष्णाय शुद्धाय ब्रह्मणे परमात्मने ।

योगेश्वराय योगाय त्वामहं शरणं गता ॥²⁰

अर्थात् सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीकृष्ण! तुम महायोगी हो, विश्वात्मा हो और तुम सारे विश्व के जीवन दाता हो। गोविन्द मैं अपने बच्चों के साथ दुःख पर दुःख भोग रही हूँ। तुम्हारे शरण में आयी हूँ। मेरी रक्षा करो मेरे बच्चों को बचाओं यह संसार मृत्युमय है और तुम्हारे चरण मोक्षदायक है। संसार से भीत जनों के लिए तुम्हारी शरण के अतिरिक्त अन्य कोई सहारा नहीं है। तुम परमब्रह्म परमात्मा हो। समस्त साधनों, योगों और उपायों के स्वामी हो तथा स्वयं योग भी हो। श्रीकृष्ण! मैं तुम्हारी शरण में आयी हूँ। मेरी रक्षा करो।

अक्रूर द्वारा संवाद पहुँचाये बिना ही श्रीकृष्ण ने कुन्ती के अन्तर्मन का भाव जान लिया। भगवान् ने कुन्ती की प्रार्थना सुन ली और अन्त तक पाण्डवों का साथ दिया। सारथी के रूप में अर्जुन के जीवन की और प्रतिष्ठा की बागड़ेर थाम ली और अन्त में उन्मुक्त भाव से संचालित करते रहे। इस प्रकार भगवान् ने कुन्ती की अपने में आस्था एवं भक्ति का आदर किया तथा पाण्डवों की रक्षा करते रहे। पाण्डवों पर श्रीकृष्ण असीम कृपा का कारण कुन्ती का श्रीकृष्ण के प्रति असीम प्रेम एवं भक्ति ही है।

विग्र सुदामा पर कृपा — एक ब्राह्मण कृष्ण के परम मित्र थे। वे बड़े ही ब्रह्मज्ञानी, विषयों से विरक्त शान्तचित्त एवं जितेन्द्रिय थे। उनका नाम था सुदामा। वे अत्यन्त दरिद्र थे। क्षुधापीड़ित उनकी पत्नी ने कहा लक्ष्मीपति भगवान् कृष्ण आपके सखा है। वे ब्राह्मणों के परम भक्त हैं। आप उनके पास जाइये। जब जानेंगे कि आप कुटुम्बी हैं और अन्न के बिना दुरुखी हो रहे हैं, तो अपको बहुत—सा धन देंगे। आजकल कृष्ण यादवों के स्वामी के रूप द्वारका में निवास कर रहे हैं।

पत्नी के द्वारा उत्प्रेरित सुदामा श्रीकृष्ण के लिए उपहार स्वरूप चार मुद्ठी चिउड़ा (पृथुक्तण्डुल) लेकर गये। जैसे ही सुदामा के आने की सूचना मिली श्रीकृष्ण दौड़ते हुए आये, उन्हें अपने महल में ले गये और रुकिमणी के पलंग पर बैठाये। उनके चरण पखारे बहुत आदर स्वागत किया। श्रीकृष्ण द्वारा उनका सम्मान देखकर स्त्रियाँ विस्मित हो गयी कि एक राजा एक दरिद्र ब्राह्मण का इतना आदर कर रहा है।

फिर दोनों मित्र साथ बैठे, बाते करने लगे। गुरुकुल की बातें याद करते हुए वे परमानन्दित होने लगे। ब्राह्मण ने स्वयं को कृतार्थ बतलाया कि गुरुकुल में कृष्ण साथ रहने और विद्याध्ययन का अवसर मिला। दोनों ही मित्र परस्पर बातचीत करते हए अत्यन्त प्रसन्न हो रहे थे।

श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण से पूछा— ब्राह्मण आप मेरे लिए क्या उपहार लाये हैं? मुझे थोड़ा—सा भी कुछ दोगे उससे मुझे बहुत सुख मिलेगा, प्रसन्नता होगी। संकोचवश ब्राह्मण ने उन्हें चिउड़ा नहीं दिया। ब्राह्मण के मन का भाव जानकर भगवान् ने स्वयं पोटली छीन ली और कहा मित्र! तुम मेरे लिए अत्यंत प्रिय उपहार लाये हो ये चिउड़े न केवल मुझे बल्कि सारे संसार को तृप्त करने के लिए पर्याप्त है। भगवान ने प्रेमपुर्वक उसे खाना शुरू किया। एक मुहुर्ही ही खाये थे कि रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण का हाथ पकड़ लिया। वे जानती थी कि पूरा चिउड़ा खा लेंगे तो त्रैलोक्य का ऐश्वर्य ब्राह्मण को दे डालेंगे।

ब्राह्मण ने उस रात श्रीकृष्ण के भवन में ही वास किया आराम से खाया पिया और बैकुण्ठ के सुख अनुभव किया। उन्हें श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष रूप में कुछ नहीं मिला और न इन्होंने कुछ मांगा अपने कृत्य पर लज्जित होकर श्रीकृष्ण के दर्शनजय लाभ की चर्वणा करते हुए द्वारका से चल पड़े।

वे ब्राह्मण अपने घर के पास पहुँचे। घर का स्वरूप ही परिवर्तित हो चुका था। उनका झोपड़ी बड़े महल में परिणत हो चुकी थी। वे अपना घर पहचान भी न सके। ऐसा लगता था कि श्रीकृष्ण के राजप्रसाद और ब्राह्मण के भवन में कोई भेद ही नहीं है। धनैश्वर्य से घर भरा हुआ है। वे समझ नहीं पाये कि इस सम्पत्ति का रहस्य क्या है? फिर उन्होंने समझा कि अवश्य ही यह श्रीकृष्ण की कृपा है।²¹

जैसे ही सुदामा द्वारा चलने के लिए तैयार हुए, उनके मन में विचार आया कि श्रीकृष्ण पुराने मित्र है, राजा है, चिरकालोपरान्त उनसे मिलने जा रहे हैं, खाली हाथ जाना उचित नहीं है। उन्होंने पत्नी से कहा उपहार के लिए घर में कुछ नहीं है। पत्नी ने चार मुहुर्ही चिउड़ा पड़ोसिन से मांगकर ला दिया। भगवान् निर्धन मित्र की भावनाओं को समझ गये। उन्होंने स्पष्ट कहा —

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो में भक्त्याप्रयच्छति ।

तदहं भक्तयुपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः । |²²

एक मुहुर्ही चिउड़ा खाकर भगवान परम प्रसन्न हो गये। उन्होंने सदा के लिए मित्र के पास से दीनता को दूर भगा दिया। भगवान् का भक्त के उपर कृपा का यह सबसे बड़ा उदाहरण है।

संदर्भ संकेत :

1. नारदभक्तिसूत्र 2
2. श्रीमद्भागवत 3 / 29 / 11–12
3. श्रीमद्भागवत 3 / 29 / 7
4. श्रीमद्भागवत 3 / 29 / 10
5. श्रीमद्भागवत 3 / 29 / 9
6. श्रीमद्भागवत 3 / 29 / 8
7. श्रीमद्भागवत 7 / 1 / 25
8. श्रीमद्भागवत 10 / 19 / 4

9. श्रीमद्भागवत् 10/11/10–11
10. श्रीमद्भागवत् 10/17/24–25
11. श्रीमद्भागवत् 10/41/41–42
12. श्रीमद्भागवत् 10/41/49
13. श्रीमद्भागवत् 10/41/51
14. श्रीमद्भागवत् 10/41/52
15. श्रीमद्भागवत् 10/42/2
16. श्रीमद्भागवत् 10/42/6–98
17. श्रीमद्भागवत् 10/48/6
18. श्रीमद्भागवत् 10/48/27
19. श्रीमद्भागवत् 10/48/30
20. श्रीमद्भागवत् 10/49/11–13
21. श्रीमद्भागवत् 10/80, 81वाँ अध्याय
22. श्रीमद्भागवत् 10/81/4